नृत्यकला में आहार्य अभिनय की भूमिका

डॉ. अपर्णा चाचोंदिया
सहायक प्राध्यापक (नृत्य)
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

नृत्यकला एक ऐसी कला है जो न केवल मनुष्य अपितु समस्त प्राणी जगत अर्थात पशु-पक्षी आदि में भी अपनी आनंद अभिव्यक्ति का परम साधन है। हमने वर्षा ऋतु में मयूर का आनंद नृत्य देखा है, बीन पर नागिन को नाचते देखा है। इस तरह हम कह सकते हैं कि नृत्यकला समस्त जगत में विद्यमान है। नृत्यकला की उत्पत्ति से संबंधित विभिन्न पौराणिक कथाएं नृत्य जगत में प्रचलित हैं जो कि एक विस्तृत विषय हैं। हमारा उद्देश्य नृत्यकला में अभिनय भेदों पर चर्चा करते हुए मुख्यरूप से आहार्य अभिनय की नृत्य में महत्ता पर प्रकाश डालना है। इसलिए सर्वप्रथम हमें यह जानना आवश्यक है कि अभिनय क्या है? उसके कितने भेद हैं? एवं नृत्य में उनकी अनिवार्यता क्यों है? सामान्य शब्दों में अनुकरण या नकल करने को ही अभिनय मान लिया जाता है, किन्तु अभिनय का अर्थ इतना सीमित नहीं है। विभिन्न प्राचीन शास्त्रों में अभिनय को परिभाषित किया गया है एवं इसके भेदों पर सविस्तार लिखित साहित्य भी उपलब्ध है।

'अभि' का अर्थ है - 'की ओर' तथा 'नय' का अर्थ है - 'ले जाना'। इस प्रकार अभिनय शब्द का अर्थ हुआ- ''कवि (नाटककार) या रचनाकार के मुख्य भावों की ओर दर्शकों को ले जाना''। (डॉ. पुरू दाधीच ''कथक नृत्य शिक्षा'' प्रथम भाग, पृ. 30) अभिनय में वास्तविकता और कलात्मकता का संयोग दर्शकों में रस की उत्पत्ति करता है। कुशल अभिनेता अभिनय के सभी भेदों में दक्षता प्राप्त कर दर्शकों को अपनी कला के वांछित स्थान तक पहुंचाने में सफल होते हैं।

शास्त्रों में अभिनय के चार भेद या प्रकार बतलाए गए हैं- आंगिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक सभी कलाकारों को इनके विषय में ज्ञान होना आवश्यक है। इसलिए इन अभिनय भेदों को संक्षेप में समझना आवश्यक है।

आंगिक अभिनय - आंगिक अभिनय का संबंध अंग संचालन के तरीके और नियमों से है। शास्त्रों में शरीर के विभिन्न अंग जिन्हें अंग-प्रत्यंग और उपांग में वर्गीकृत किया गया है, उनके कलात्मक संचालन द्वारा निर्मित विभिन्न मुद्राओं एवं भाव-भंगिमा का शास्त्रों में विधिवत विवरण उपलब्ध है। सभी मुद्राओं एवं भंगिमाओं का कुछ न कुछ अर्थ होता है, जिससे कलाकार बिना किसी सामग्री को मंच पर लाए सिर्फ आंगिक अभिनय के द्वारा दर्शकों को उस सामग्री का अनुभव करा देते है, जैसे श्री कृष्ण का भाव बताने के लिए हाथों की मुद्राओं के द्वारा मुरली का भाव दिखाया जाता है। यहाँ वास्तविक मुरली की आवश्यकता नहीं होती। बिना किसी सामग्री का प्रयोग किए कलाकार, दर्शकों को अपनी प्रस्तुति का अर्थ समझाने में सफल होते हैं। सभी अंग संचालन के नियम एवं विनियोग शास्त्रों पर आधारित होते हैं ताकि इनके प्रयोग में एकरूपता रहे और प्रशिक्षण में भी परेशानी न हो।

वाचिक अभिनय - वाचिक अभिनय मुख्यरूप से बोलने की कला है। वाणी के उतार-चढ़ाव द्वारा भावों को दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। व्यक्ति की विभिन्न मानसिक दशाओं का उसके बोलने पर भी प्रभाव पड़ता है। कलाकार अभ्यास द्वारा उनमें दक्षता प्राप्त कर अपने आंतरिक भावों के वेग में वाचिक से दर्शकों को बहाने का प्रयास करते हैं। वाचिक अभिनय का प्रयोग नाट्यकला में सर्वाधिक होता है। में भी वाचिक अभिनय का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जबकि नृत्यकला में इसका प्रयोग तुलनात्मक दृष्टि से कम होता है। में प्रयुक्त बोलों की पढ़ंत एवं भाव पक्ष में प्रयुक्त गीतों आदि को गाने में वाचिक अभिनय का प्रयोग

आहार्य अभिनय - सभी दृश्य कलाओं में आहार्य अभिनय का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। मंच आहार्य अभिनय का उचित प्रयोग प्रदर्शन के प्रभाव को कई गुना बढ़ा सकता है। बाहरी साधनों से शरीर को फिर मंच पर आहरण करने के कारण ही इसे आहार्य अभिनय कहते हैं। (डॉ. पुरू दाधीच ''कथक नृत्य शिक्षा'' भाग, पृ. 31) यहाँ पर यह जान लेना भी आवश्यक है कि आहार्य अभिनय का प्रयोग केवल कलाकार को सजाने में ही नहीं है, अपितु प्रस्तुति की आवश्यकता अनुसार मंच पर वांछित वातावरण तैयार करने में भी आहार्य का प्रयोग होता है। आहार्य अभिनय के प्रयोग चार प्रकार से होते हैं - 1. रूप सज्जा (Make up) 2. वस्त्र आ 3. पुस्त (Model/ Setting) व संजीव अर्थात मुखौटा लगाकर अन्य जीव-जंतु दिखाना।

सात्विक अभिनय - सात्विक अभिनय का प्रदर्शन सर्वाधिक कठिन होता है, क्योंकि इसमें अपनी को यथावत दर्शकों को अनुभूत कराने की संपूर्ण जिम्मेदारी केवल अभिनेता की होती है। आंगिक व वाचिक की बाह्य अभिव्यक्ति एवं उनका सौंदर्य सात्विक अभिनय के बिना अपूर्ण है। (डॉ. ज्योति बख्शी ''कथक : की आरसी'' पृ. 35) सात्विक अभिनय के आठ प्रकार हैं - 1. स्तंभ 2. प्रलय 3. रोमांच 4. स्वेद 5. वैवर्ण्य 6. 7. अश्रु 8. वैस्वर्य। सात्विक अभिनय के प्रदर्शन के लिए अंग संचालन की अपेक्षा मुख के द्वारा भावाभिव्यक्ति जाती है। इसे अभिनय के चारों भेदों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

नृत्यकला में चारों भेदों का प्रयोग किया जाता है। अभिनय के इन सभी भेदों का नृत्यकला में प्रयोग आप में एक विस्तृत विषय है, जो कि नृत्यकला के विद्यार्थियों के लिए ही अधिक उपयोगी सिद्ध होगा क्योंकि में प्रयुक्त शब्दावली एवं प्रस्तुतिकरण की विषयवस्तु को नृत्य कलाकार ही भली-भाँति समझ सकते हैं। इस शोध पत्र को लिखने के लिए अभिनय भेदों में से आहार्य अभिनय को ही शीर्षक के रूप में चुना गया क्योंकि वेश एवं रूप-सज्जा आदि से सभी लोग भली-भाँति परिचित होते हैं। जनसामान्य जो कि नृत्य की तकनीकी बारीकियों नहीं समझते उनके लिए भी यह जानकारी उपयोगी सिद्ध हो ऐसी अपेक्षा है। आहार्य अभिनय मंच प्रस्तुति के की तैयारी होती है चाहे कलाकार का तैयार होना हो या मंच-सज्जा आदि।

सर्वप्रथम हम वेशभूषा के बारे में जानेंगे, क्योंकि वेशभूषा ही किसी व्यक्ति की सबसे पहली पहचान है। किसी भी व्यक्ति को पहली बार देखकर ही हम अंदाजा लगा लेते हैं कि वह किस स्थान का है ? उसकी परिस्थिति क्या है ? उसके धर्म-जाति आदि को भी उसकी वेशभूषा द्वारा पहचाना जा सकता है। इसी तरह नृत्यकला में भी वेश का अत्यंत महत्व है। शास्त्रीय नृत्य, लोकनृत्य या आदिवासी नृत्य को भी वेशभूषा के आधार पर वर्गीकृत किया सकता है। सामान्य दर्शक वेशभूषा को देखकर बता सकता है कि कौन-सा नृत्य प्रस्तुत किया जा रहा है। भारत

लोकनृत्य अपने अंचलों में प्रचलित वेशभूषा का प्रयोग अपने नृत्य की प्रस्तुति में करते हैं जिससे मंच पर कलाकारों के आते ही दर्शक समझ जाते हैं कि किस प्रान्त का लोकनृत्य प्रस्तुत होने वाला है। आदिवासी नृत्य में जंगलों से प्राप्त सामग्री से वेशभूषा एवं आभूषण आदि बड़े ही कलात्मक तरीके से तैयार कर लिए जाते हैं जिसमें पक्षियों के पंख, कोंड़ियों एवं जानवरों के सींग आदि का प्रयोग किया जाता है जिससे कि वह अन्य नृत्यों से अलग पहचान बना लेते हैं। इस तरह लोकनृत्य और कुछ सीमा तक आदिवासी नृत्य भी ऐसी वेशभूषा तैयार करते हैं जो उस प्रांत या अंचल के लोगों द्वारा आम जनजीवन में भी पहनी जाती है। उसी को कलात्मक तरीके से परिष्कृत रूप में तैयार कर लिया जाता है। किन्तु शास्त्रीय नृत्यों में प्रयुक्त वेशभूषा विशेष तरीके से निर्मित की जाती है जिसे सामान्य लोगों द्वारा सामान्य अवसरों पर नहीं पहना जा सकता। शास्त्रीय नृत्य शास्त्रों पर आधारित होते हैं। एक बार जो वेशभूषा किसी भी शास्त्रीय नृत्य कला के लिए निर्धारित कर दी गयी वह एक नियम की तरह नृत्य साहित्य में कहीं न कहीं लिखित रूप से संरक्षित हो गयी। प्रत्येक शास्त्रीय नृत्य की अपनी एक अलग वेशभूषा एवं आभूषण हैं, जिन्हें देखकर दर्शक समझ सकते हैं कि नर्तक या नर्तकी भरतनाट्यम प्रस्तुत करने वाले हैं या कथक, मणिपुरी नृत्य के कलाकार हैं या ओडीसी नृत्य के। सभी शास्त्रीय नृत्यों की वेशभूषा एवं आभूषणों में पर्याप्त विविधता है। अधिकतर शास्त्रीय नृत्यों की वेशभूषा एवं आभूषणों का प्रयोग पुराने समय से यथावत चला आ रहा है तथा उनमें बहुत ही कम परिवर्तन हुए हैं, किन्तु कुछ ऐसे शास्त्रीय नृत्य हैं जिनमें विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न शासकों के शासनकाल की गहरी छाप अंकित होती गयी। उनके पूरे आवरण को परिवर्तित करने के प्रयास किए गए और बहुत हद तक इसमें सफलता भी मिली। जैसे उत्तर भारत का लोकप्रिय शास्त्रीय नृत्य कथक। मुगल काल में कथक नृत्य में बहुत सारे परिवर्तन हुए एवं उसकी वेशभूषा पर भी उस काल का प्रभाव रहा। समय व स्थान के कारण कथक जगत में दो वेशभूषा समान रूप से प्रचलित रही यथा मुगलकालीन वेशभूषा एवं राजपूत कालीन वेशभूषा।

ओडीसी नृत्यकला में उड़िया करघे से बुनी रेशमी साड़ी को लांगदार करके इस तरह से बाँधा जाता है कि उसका पल्ला आगे फैला रहता है। कथकली नृत्य में कई परतों के झालरयुक्त लंहगे व पूरी आस्तीन के अंगरखे पहने जाते हैं। मणिपुरी नृत्य की वेशभूषा बहुत आकर्षक एवं बहुमूल्य होती है। इसमें दफ्ती या बेंत की छड़ियाँ लगाकर एक विशेष प्रकार का लंहगा तैयार किया जाता है उसके ऊपर एक छोटी सी घंघरिया रहती है जो उस लंहगे को आधे दूर तक ढँक लेती है। भड़कीले रंगों की चोली एवं पारदर्शक ओढ़नी होती है। मणिपुर के महाराज जयसिंह इस वेशभूषा के आविष्कारक हैं। भरतनाट्यम नृत्य की वेशभूषा बहुत ही आकर्षक एवं सजीली होती है। श्रीमती रुकमणी देवी अरुंडेल ने इस नृत्य की वेशभूषा अविष्कृत की है। इसकी वेशभूषा दक्षिणी कांजीवरम साड़ी से बनाई जाती है। नीचे का हिस्सा धोती की तरह होता है। कमर पर चुन्नट बनाकर पंखे जैसी आकृति तैयार की जाती है। कंधे के ऊपर से पल्लू लेकर कमर पर लपेट लिया जाता है।

भारत के प्रमुख शास्त्रीय नृत्यों की वेशभूषा पर संक्षिप्त चर्चा करने के उपरांत नृत्यकला में रूप-सज्जा का परिचय भी आवश्यक है। वैसे तो सभी मंचीय कलाओं में रूप-सज्जा का बहुत महत्त्व है, किन्तु नृत्यकला में रूप-सज्जा का अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि यह कलाकारों के प्रति दर्शकों के आकर्षण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। रूप-सज्जा के द्वारा न केवल नर्तक या नर्तकी के रूप-सौन्दर्य में वृद्धि होती है, अपितु उन्हें अभिनय करने में भी आसानी

होती है। कलाकारों के मुख पर उपस्थित सभी उपांगों को जब व्यवस्थित रूप से सजाया जाता है तो
अधिक सुंदर एवं स्पष्ट दिखने लगते हैं। विभिन्न प्रकार की नृत्यकला में रूप-सज्जा के भी अलग-अलग
किन्तु उद्देश्य सभी का एक ही है- सौन्दर्य प्रसाधनों के माध्यमों से कलात्मक रूप से एक आकर्षक रूप
जो कि प्रस्तुति के दौरान दर्शकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करे। यदि रूप सज्जा पर्याप्त ध्यान देकर
की जाए तो कलाकार के भाव प्रदर्शन में बहुत अधिक सहायक होती है। लोकनृत्य एवं आदिवासी नृत्यों
में शास्त्रीय नृत्यों में रूप-सज्जा एक सुनियोजित तरीके से की जाती है, क्योंकि शास्त्रीय नृत्य भाव-प्रधा
कथकली नृत्य अपनी आकर्षक एवं जटिल रूप-सज्जा के लिए ही प्रसिद्ध है। इस नृत्य में रूप-सज्जा के लि
को 12-12 घंटे तक लग जाते हैं। इसके सौन्दर्य प्रसाधन भी विशेष तरीके से तैयार किए जाते हैं। रूप-सज्
विभिन्न प्रकार के रंगों के लेप तैयार किए जाते हैं। भिन्न-भिन्न पात्रों के लिए भिन्न-भिन्न रंगों के लेप की
जाती है जो एक कान से दूसरे कान तक चिपकायी जाती हैं। मणिपुरी नृत्य में भी विभिन्न प्रकार के लेपों
से रूप-सज्जा की जाती है जो कि पारदर्शक ओढ़नी से भी साफ दिखाई देती है। मणिपुर में रासलीला चार
होती है- 1. वसंतरास 2. कुंजरास 3. महारास 4. नित्यरास। इन चार रास के प्रदर्शन के लिए चार तरीके की
की जाती है। कथक नृत्य में तेजी, तैयारी एवं फुर्ती अधिक होने के कारण सामान्यतः सीमित आभूषणों
किया जाता है। भरतनाट्यम में आभूषणों पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है। सभी शास्त्रीय नृत्यों में सबसे
घुंघरू जिनकी प्रत्येक कलाकार ईश्वर के समान पूजा करके ही धारण करते हैं। नृत्यकला में मंच पर नटराज
जी की प्रतिमा स्थापित की जाती है। मंच-सज्जा के लिए अधिक सामग्री का प्रयोग नहीं किया जाता है। दृश्य
के लिए पहले पर्दे का उपयोग होता था किंतु अब प्रोजेक्टर से किसी भी दृश्य को दिखाया जा सकता है

इस तरह हम कह सकते हैं कि नृत्यकला में आहार्य अभिनय का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। बि
अभिनय के नृत्यकला बेरंग दिखेगी। आज आहार्य अभिनय मंचीय प्रस्तुति की आधारभूत आवश्यकताओं
है। आहार्य अभिनय में कुशल एवं दक्ष कलाकारों की आवश्यकता होती है, नहीं तो प्रस्तुति के प्रतिकूल प्रभा
होने लगते हैं। वर्तमान में नृत्यकला की वेशभूषा पर भी बहुत से प्रयोग किए जा रहे हैं एवं रूप-सज्जा
अधिक प्रभावी सौन्दर्य प्रसाधन उपलब्ध हैं। तकनीकी विकास से साथ मंच-सज्जा के लिए भी अत्याधुनिक त
में लाए जा रहे हैं।

संदर्भ

1. डॉ. पुरू दाधीच ''कथक नृत्य शिक्षा'' प्रथम भाग, बिन्दु प्रकाशन अयोध्या अपार्टमेंट इंदौर 45200
2. डॉ. ज्योति बख्शी ''कथक : अक्षरों की आरसी'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल।